'इस संसाररूपी सागर से पार होने के लिए नित्य उद्योग कर रहे मुझको यह कुत्सित चित्त इस भाँति रोकता है जैसे कि जल के प्रवाह को बाँध रोकता है।'

तृष्णा ! हा तृष्णा !

तृष्णा क्या खेल खेलती है, इसपर भी राम ने प्रकाश डाला और कहा :

यां यां महतीमवस्थां संश्रयामि गुणश्रियम्।
तां तां कृन्तति में तृष्णा तन्त्रीमिव कुमूषिका।
18।।
सर्ग 17।।

'मैं विवेक, वैराग्य आदि–आदि गुणों से युक्त पदार्थों के विषय में जिस–जिस अवस्था का (उत्साह का) आश्रयण करता हूँ, उस–उस अवस्था को मेरी तृष्णा इस तरह काट देती है जिस तरह मूषिका (चुहिया) वीणा के चर्म – सूत्र को काट देती है।'

सर्वसंसारदोषाणां तृष्णैका दीर्घदुःखदा।
अन्तःपुरस्थमपि या योजयत्यतिसङ्कटे।।
32।।

'संसार में जितने दोष हैं उनमें एक तृष्णा ही दीर्घ काल तक दुःख देनेवाला दोष है जो अन्तःपुर में रहनेवाले को भी भीषण संकट में डाल देती है।'

व्यवहाराब्धिलहरी मोहमातङ्गशृङ्खला।
सर्गन्यग्रोधसुलता दुःख कैरवचन्द्रिका।।
38।।
जरामरणदुःखानामेका रत्नसमुद्गिका।
आधिव्याधिविलासानां नित्यं मत्ता विलासिनी।।
39।।

'तृष्णा व्यवहाररूपी समुद्र की लहरी है। मोहरूपी मत्त मातंग की शृङ्खला है। सृष्टि–रूप वटवृक्ष की सुन्दर लता है। दुःखरूप कुमुदिनियों की चन्द्रिका है। जरा–मरणरूप दुःखों की एक रत्न– पेटिका है और सदा आधि–व्याधिरूप विलासों की मदमत्त विलासिनी है।'

नाऽसिधारा न वज्रार्चिर्न तप्तायः कणार्चिषः।
यथा तीक्ष्णा तथा ब्रह्म स्तृष्णेयं हृदि संस्थिता।
48।।

'हे ब्रह्मन् ! जीवों के हृदय में स्थित तृष्णा जैसी तीक्ष्ण है, वैसी तीक्ष्ण न तो तेज तलवार की धार है, न वज्राग्नि की चिनगारियाँ हैं और न बन्दूक की गोलियाँ ही हैं।'

अपि मेरुसमं प्राज्ञमपि शूरमपि स्थिरम्।
तृणीकरोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम्।।
50।।

'मेरु के सदृश प्रति उन्नत, गौरवशाली, पराक्रमी, स्थिरचित्त, व्रत से अटल एवं विद्वान् नरश्रेष्ठ को भी एकमात्र तृष्णा ही एक क्षण में याचना द्वारा दीन–हीन बनाकर तिनके के समान उपेक्षणीय और चंचल बना देती है।'

यह मानव–शरीर

तृष्णा का मूल कारण तो मानव–शरीर है, इसलिए राम जी मनुष्य शरीर से भी उकता गए और कहने लगे :

"शरीररूपी पाकड़ का वृक्ष मुझे सुखकारक प्रतीत नहीं होता। यह संसाररूपी जंगल में उत्पन्न हुआ है। चित्तरूपी चपल बन्दर इसमें इधर–उधर कूदता – फाँदता है। चिन्तारूपी मंजरी से यह फूला हुआ है। महादुःखरूपी घुनों ने इसके चारों ओर छेद कर रखे हैं। तृष्णारूपी सर्पिणी का यह घर है। कोपरूपी कौए ने इसमें घोंसला बना रखा है।"

समस्त रोगायतनं वलीपलितपत्तनम्।
सर्वाधिसारगहनं नेष्टं देहगृहं मम।।
34।।
सर्ग 8।।

'यह देह सम्पूर्ण रोगों का घर, बुढ़ापे के कारण पड़नेवाली झुर्रियों और केशों की सफेदी का नगर है इसमें। मानसिक क्लेशों का ही प्रधानरूप से साम्राज्य है अतः उनसे इसकी गहनता का कोई ठिकाना नहीं है इसलिए यह देहरूपी घर मुझे अभीष्ट नहीं है।'

रक्तमांसमयस्याऽस्य स बाह्याभ्यन्तरं मुने !
नाशैकधर्माणो ब्रूहि कैव कायस्य रम्यता।।
38।।

'मुनिवर ! रक्त और मांस से विरचित विनाशशील इस देह के बाहर और भीतर भली–भाँति देखकर कहिए कि इसमें कौन–सी रमणीयता है।'

नश्वर देह की अस्थिरता के बारे में चर्चा करते हुए श्री राम ने उत्तम पुरुष की पहचान कराते हुए कहा :

'न मैं देह हूँ, न देह का सम्बन्धी हूँ, न मेरा देह है और न मैं ही देह का हूँ, ऐसा विचारकर परमात्मा में जिनका चित्त विश्रान्त है, वे लोग ही पुरुषोत्तम हैं।'

शरीरश्च भ्रशायिन्या पिशाच्या पेशलांगया।
अहङ्कारचमत्कृत्या छलेन छलिता वयम्।।
55।।

'शरीररूपी गढ़े में रहनेवाली मनोहर भोग तृष्णारूपिणी पिशाची ने कपट से हमें संसार में पटककर हमारा सर्वस्व हर लिया है।'

संसारी लोगों की दयनीय अवस्था

श्री राम जी मानव–देह का वर्णन करते हुए फिर इसकी बाल्य–अवस्था, यौवन तथा वृद्ध–अवस्था के दुःख सुनाकर गुरु वसिष्ठ जी से काल–गति की कथा कहते हैं कि यह काल संसार में उत्पन्न हुई हर– एक वस्तु को खाता चला जाता है। यह सर्वभक्षी काल सबको नष्ट कर रहा है यह अत्यन्त निर्दय, पाषाण से भी कठोर, क्रूर, कर्कश, कृपण और अधम है। असंख्य लोग इसकी उदरदरी में समा चुके हैं. पर इस पेटू का पेट भरता ही नहीं।'

तत्पश्चात् श्री राम जी संसारी लोगों की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं :

कलाकलङ्कितो लोको बान्धवो भवबन्धनम्।
भोगा भवमहारोगास्तृष्णाश्च मृगतृष्णकाः।।
10।।
सर्ग 26।।

'सभी संसारी लोग विषयों के अनुसन्धान से ही कलंकित (मलिन–चित्त) हैं। बन्धु–बान्धव संसाररूप बन्धन के लिए रज्जुरूप हैं। सभी भोग संसाररूपी महारोग हैं; सुख आदि तृष्णाएँ मृगतृष्णा के अनुरूप हैं।'

तप्यते केवलं साधो मतिराकुलितान्तरा।
रागरोगो विलसति विरागो नोपगच्छति।।
15।।

'साधो ! बुद्धि ने सभी के अन्तःकरण को व्याकुल कर रखा है। किसी का अन्तःकरण सुखी नहीं, केवल दुःख ही दुःख छाया है। रागरूपी रोग दिन–दिन बढ़ रहा है, वैराग्य का कहीं पता नहीं है।'

क्रमशः

'महर्षि दयानन्द रामकृष्ण परमहंस के चरणों में गिर पड़े' – दयानन्द को अपमानित करने के लिए गढ़ा गया झूठ

डॉ. भवानीलाल भारतीय

श्री रामकृष्ण मठ मयलापुर मद्रास से 1946 ई. में एक पुस्तक 'श्री रामकृष्ण एण्ड हिज
मिशन' शीर्षक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक स्वामी रामकृष्णानन्द हैं। पुस्तक के पृष्ठ 41 पर निम्न वृत्तान्त दिया गया है –

"Thence the party went to Allahabad- There Swami Dayananda Saraswati met him. This was the year 1869, the year of Kumbha, when Sri Ramakrishna was thirty six years of age. The Swamin opened a little discussion in which he wanted to establish that God would not have any form which his opponent strongly denied. At last Dayananda fell down at his feet, seeing some divine manifestation in him."

अर्थात् – "वहाँ से यह दल इलाहाबाद गया। यहाँ स्वामी दयानन्द से रामकृष्ण की भेंट हुई। यह 1869 का वर्ष था जब प्रयाग में कुम्भ का मेला लगा था। इस समय श्री रामकृष्ण की आयु 36 वर्ष थी। स्वामी दयानन्द ने श्री रामकृष्ण से वाद–विवाद करते हुए यह सिद्ध करना चाहा कि परमात्मा की कोई आकृति (रूप) नहीं होती। श्री रामकृष्ण इसका तीव्र प्रतिवाद करने लगे। अन्ततः दयानन्द रामकृष्ण के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने अनुभव किया कि रामकृष्ण में भगवदीय तत्त्व प्रतिभासित हो रहा है।"

निश्चय ही उपर्युक्त कथन में किंचित्मात्र सत्यता नहीं है। यह तो सत्य है कि महर्षि दयानन्द प्रयाग के कुम्भ में सम्मिलित हुए थे, परन्तु उस समय 1869 ई. का वर्ष समाप्त हो चुका था। स्वामीजी से परमहंसजी की भेंट कलकत्ता में हुई थी, प्रयाग में नहीं। यह कथन और भी असमंजसपूर्ण है कि महर्षि दयानन्द ईश्वर के निराकारत्व को सिद्ध नहीं कर सके और परमहंसजी के चरणों में गिर पड़े।

आत्मकूर ग्राम (आन्ध्रप्रदेश) निवासी पं. पद्मनाभ शास्त्री ने इस प्रसंग को उद्धृत कर ठीक लिखा है–

"शास्त्रार्थ संग्राम महारण्यो (रणे साधू रण्यः) दयानन्द क्व च साधुसत्तमः श्री रामकृष्णः परमहंसो योह्यनघ्रातव्याकरणादि तन्त्रगन्धः? कथं वा स्यात् सम्भवः श्री रामकृष्णस्य चरणयोर्दयानन्दस्य पातः? स्वयं ईश्वरदेह धारित्ववादनिरसन चुंचुर्दयानन्दः कथङ्कार वा मन्येत श्रीरामकृष्ण स्येश्वरविभूतिमत्त्वम्?" (वेदवाणी, वैशाख 2018 वि.)

इस संस्कृत उद्धरण का आशय निम्न है –

"कहाँ तो शास्त्रार्थ संग्रामरूपी महारण्य (भयानक जंगल) में निर्भीक विचरनेवाले दयानन्द और कहाँ साधु श्रेष्ठ श्री रामकृष्ण जो व्याकरणादि शास्त्रों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। ईश्वर के देहधारी होने का प्रत्याख्यान करनेवाले दयानन्द को रामकृष्ण का खुद को ईश्वर कहना तथा ईश्वरीय विभूतियों से युक्त मानना कब स्वीकार्य था?"

{स्रोत : नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, भाग 2, पृष्ठ 919–920, 926, प्रस्तुतकर्ता भावेश मेरजा}

भारतीय साहित्य, दर्शन और सांस्कृतिक परम्परा का उत्स - वेद

● डॉ. ज्वलन्त शास्त्री

'भारतीय दर्शन का इतिहास' के लेखक श्री सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त ने प्रारम्भ में यह बताया है कि यूरोपीय विद्वान् कहते हैं कि भारत का कोई दर्शन नहीं है। भारत में देव कथाएँ हैं, मिथक हैं, काव्य हैं और धर्म तो हैं ही। लेकिन विवेक सम्मत दर्शन भारत में नहीं है। इस प्रकार दार्शनिक रिक्थ और भाषायी रिक्थ आपके पास नहीं है। सिकन्दर ने आकर पहले पहल भारत को पाश्चात्य सभ्यता से परिचित कराया। फिर अंग्रेज़ आए बहुत दिन बाद और उन्होंने भारत को ज्ञान–विज्ञान का प्रकाश दिया।

मार्क्सवादी विचारधारा के प्रसिद्ध विद्वान् प्रगतिशील समालोचक डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं कि उपर्युक्त अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक मूल्याङ्कन के लिए उन्होंने दर्शनों का अध्ययन प्रारम्भ किया। कुछ दिनों तक पढ़ने के बाद वे इस परिणाम पर पहुँचे कि बिना ऋग्वेद को पढ़े हुए भारतीय दर्शन के विस्तार को नहीं समझा जा सकता। डॉ. शर्मा की प्रसिद्ध कृति 'पश्चिम एशिया और ऋग्वेद' की यही पृष्ठभूमि है। भारतीय संस्कृति और परम्परा के मूल्याङ्कन के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा के शब्द इस प्रकार हैं–

> ***"भारत और यूनान के दर्शन का विवेचन ऋग्वेद को छोड़कर नहीं किया जा सकता। मैंने यह भी अनुभव किया कि ऋग्वेद बहुत ऊँचे दर्जे का दार्शनिक काव्य है। बिना इसके भारतीय साहित्य के विकास का विवेचन नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद का अधिक भाग कर्मकाण्ड के लिए नहीं रचा गया। वास्तव में वह कर्मकाण्ड का विरोधी है। अधिकांश भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् कर्मकाण्ड को ध्यान में रखकर ऋग्वेद और अथर्ववेद की व्याख्या करते हैं।"***

युधिष्ठिर मीमांसक ने इस बात को अच्छी तरह पहचाना है कि कर्मकाण्डी पण्डितों ने वैदिक ऋचाओं का कैसा दुरुपयोग किया है? मुझे ऐसा लगा कि वैदिक साहित्य की मूलधारा जीवन की स्वीकृति की धारा है। वह संसार के मिथ्या होने का प्रचार नहीं करती। वह मनुष्य को सामाजिक जीवन बिताने पर बहुत जोर देती है। भारतीय साहित्य में प्रख्यात तीन आचार्य हैं– **पाणिनि, चरक और कौटिल्य।** पिछले डेढ़ सौ साल में इस बात का प्रचुर प्रचार किया गया कि भारत अध्यात्मवादी देश है और यथार्थजीवन उसके लिए महत्त्वहीन था किन्तु यथार्थ जीवन पर ध्यान दिए बिना पाणिनि, चरक और कौटिल्य की व्याख्या नहीं की जा सकती।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है कि ऋग्वेद का ऋषि प्रार्थना नहीं करता। वह किसी देव के गुण बताता है तो उसका आशय यह होता है कि ऐसे गुण मुझमें भी हैं। वास्तव में प्रार्थना की ज़रूरत तब पड़ती है जब समाज में वर्ग भेद बढ़ जाता है। मनुष्य अपने को असहाय पाता है। ऋग्वेद का कवि असहाय नहीं है, वह जितनी सहायता देवता से लेना चाहता है उतनी उसे भी देने को तैयार होता है। यह सहायता केवल कवि के रूप में नहीं होती बल्कि काव्य शक्ति के रूप में होती है। वह अपनी काव्य शक्ति से देवता को शक्तिशाली बनाता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत, वाल्मीकिरामायण इन सबमें भारतीय मनुष्य तनकर खड़ा होता है। उसने किसी देवता के आगे सिर झुकाना नहीं सीखा। देवता वास्तव में प्राकृतिक शक्तियाँ हैं और ये शक्तियाँ मनुष्य के भीतर भी हैं। वैदिक प्रतीकवाद का रहस्य यह है कि कवि निरन्तर बाहर और भीतर की शक्तियों में तालमेल करता है, इसलिए पलायन का प्रश्न ही नहीं उठता।

आर्य बाहर से आए और उन्होंने भारत को नई सभ्यता दी – यह जो कहा जाता है, उसके सम्बन्ध में मेरा कहना है कि आर्य नाम का कोई समाज नहीं था। इस नाम की कोई नस्ल नहीं थी। नस्ल के आधार पर कहीं भी किसी समाज का गठन नहीं हुआ। नस्ल की कल्पना 19वीं सदी में यूरोप के लोगों ने की। 19वीं सदी के मध्य तक भारत में आर्यों के बाहर से आने की कल्पना लोकप्रिय नहीं हुई थी **इसीलिए मार्क्स ने 1853 ई. में भारत के बारे में लिखा था कि यह देश यूरोप की भाषाओं और धर्मों का स्रोत है।** 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के सुदृढ होने और यूरोप की अन्य जातियों के प्रसार के साथ यूरोपीय विद्वानों को लगा कि भारत को अपनी भाषाओं का स्रोत कहना उनके लिए अपमान की बात है, जिनको उन्होंने बनाया है, उनके बाप–दादों को अपनी भाषाओं का जनक कहना सम्मान विरुद्ध है। इसी वजह से उन्होंने भारत पर आर्यों के आक्रमण की कहानी गढ़ी। यह काम मुख्यतः जर्मनी में हुआ। उन्होंने ध्वनितन्त्र के ऐसे नियम बनाए, जिससे संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि के सम्बन्धों की व्याख्या की जा सके।

यह झूठ (भारत में बाहर से आने वाले आर्यों की कल्पना तथा भारत पर आर्यों के आक्रमण की कहानी) विद्वानों के दिमाग में घर कर गया है। आर्य लोगों के ईरान से भारत आने के बारे में एक छोटा–सा सवाल है कि **ईरान में तो आर्य सिन्धु को हिन्दू और असुर को अहुर कहते थे लेकिन भारत आकर वे हिन्दू को सिन्धु और अहुर को असुर कैसे कहने लगे? और ऋग्वेद में असुर और सिन्धु हैं, अहुर और हिन्दू नहीं।** संस्कृति के मूलस्रोत– वेदों को जाने बिना भाषा, शरीर और समाज का विश्लेषण सम्भव नहीं है।

मैक्डानल और कीथ संस्कृत भाषा के बहुत बड़े विद्वान् थे। वे आधुनिक विज्ञान की प्रगति से भी परिचित थे। उन्होंने ***'वैदिक इण्डेक्स'*** नाम से वैदिक शब्दों का प्रसिद्ध कोश बनाया था। इसमें उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि वैदिक भारतीय बहुत प्राचीन काल से शरीर की रचना से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करने लगे थे। उदाहरणस्वरूप वे अथर्ववेद के एक सूक्त का हवाला देते हैं, जिसमें एड़ी से लेकर कपाल तक मानव शरीर के अङ्गों का वर्णन है। इस वर्णन को उन्होंने व्यवस्थित और किसी हद तक सही बताया है। चरक और सुश्रुत ने मानव अङ्गों का जो वर्णन किया, उससे अथर्ववेद के वर्णन को उन्होंने बहुत मिलता–जुलता बताया है। प्रवाद है कि भारतवासी आत्मा और परलोक की बातें सोचते हैं, शरीर और नश्वर संसार के बारे में कुछ सोचना और कहना आवश्यक नहीं समझते पर शरीर पर ध्यान दिए बिना उसके अङ्गों का वर्णन कोई कैसे करेगा? और चरक संहिता में रोगियों की चिकित्सा के लिए जिन पचासों जड़ी–बूटियों के नाम आए हैं, उनकी पहचान संसार का, प्रकृति का अध्ययन किए बिना कैसे सम्भव है? वास्तव में शरीर रचना का अध्ययन अथर्ववेद से आरम्भ नहीं होता, उसके पहले वह ऋग्वेद से आरम्भ हो चुका है। ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त शरीर के अङ्गों पर है और वह अथर्ववेद के कवियों को इतना प्रिय था कि उन्होंने थोड़े से परिवर्तन के साथ उसे एक से अधिक बार दोहराया है। चरक संहिता में शिष्य ने गुरु से पूछा कि **वैद्यों का वेद** कौन–सा है? गुरु ने उत्तर दिया– हमारा वेद अथर्ववेद है। चिकित्सा विज्ञान की परम्परा अथर्ववेद से चली आ रही है। इस वेद के प्रति पुराने लोग सचेत थे। अथर्ववेद और चरक संहिता में बहुत से अङ्गों के नाम बहुत से रोगों के नाम, इनके साथ बहुत–सी ओषधियों के नाम सामान्य हैं। इनमें अनेक नाम ऋग्वेद और अथर्ववेद में सामान्य हैं। रस, रक्त और ओज सब शरीर में प्रवाहमान है। प्रवाह का माध्यम धमनी, स्रोत और सिरा हैं।

यदि संसार मिथ्या है तो शरीर मिथ्या है, उसके रोग मिथ्या हैं, रोगों के उपचार के लिए जिस धरती से जड़ी बूटियाँ एकत्र की जाती हैं, वह धरती मिथ्या है और जड़ी बूटियाँ भी मिथ्या हैं। ऐसा मिथ्यावाद ऋग्वेद और अथर्ववेद में नहीं है, यह निश्चित है। भारत में जो भी ज्ञान विज्ञान में उन्नति हुई है, वह सापेक्ष रूप में संसार और मानव शरीर को सत्य मानकर ही हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में विज्ञान की उन्नति से दर्शन का गहरा सम्बन्ध है। भाषाविज्ञान में पाणिनि, शरीर विज्ञान में चरक या उनके पूर्ववर्ती आचार्य अग्निवेश, आत्रेय, पुनर्वसु आदि और अर्थशास्त्र में कौटिल्य अथवा उनके पूर्ववर्ती बृहस्पति, उशना आदि आचार्य सब संसार को सत्य मानकर ही भाषा, शरीर और समाज का विश्लेषण कर सके थे। प्राचीन दर्शन की कोई भी धारा लोकहित छोड़कर नहीं चलती। लोक न होगा तो लोकहित कहाँ से होगा? ब्रह्म और आत्मा की सर्वाधिक चर्चा करने वाला वेदान्त भी लोकहित का तिरस्कार नहीं करता। लोक हित की यह धारणा उपनिषदों से धर्मशास्त्र तक चली आई है।

भारतीय दर्शन की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वह लोकव्यवहार से कभी पूरी तरह असम्बद्ध नहीं हुआ। धर्मशास्त्रों में बार–बार कहा गया है कि पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड की तुलना में सदाचार बढ़कर है। सदाचार मनुष्य के नैतिक मूल्यों का एक दार्शनिक आधार है। वह उपनिषदों और वेदों में भी में प्राप्त है। जो ब्रह्म मनुष्य के भीतर है, वही ब्रह्म दूसरे मनुष्य के भीतर है इसलिए एक मनुष्य दूसरे से घृणा क्यों करे? अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

संस्मरण

–पं. सत्यपाल सरल आर्य भजनोपदेशक की 78वीं जयन्ती पर–

ऋषिभक्त आर्य-भजनोपदेशक पं. सत्यपाल सरल जी

● *मनमोहन कुमार आर्य*

उन्नीसवीं शताब्दी व उसके बाद देश में जन–जागरण में आर्यसमाज व इसके भजनोपदेशकों का विशेष योगदान रहा है। देश–विदेश में आर्य भजनोपदेशकों ने प्रशंसनीय जागृति पैदा की है। आर्य भजनोपदेशकों के इस योगदान को कुछ आर्य इतिहासकारों ने अपनी आँखों से ओझल कर दिया। पं. चन्द्रकवि, कुँवर सुखलाल, स्वामी नित्यानन्द, स्वामी धर्मानन्द आदि ऐसे अनेक आर्य भजनोपदेशक हुए हैं जो हँसते हुए स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल गए और वहां देश की आज़ादी के लिए यातनाएँ सहन कीं। आज भी आर्यजगत् में अनेक आर्य भजनोपदेशक धर्मप्रचार, समाज–सुधार, राष्ट्रीय भावना को जागृत करने के कार्य में संलग्न हैं। आर्य भजनोपदेशक श्री सत्यपाल सरल इसी परम्परा के भजनोपदेशक रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से वे रक्त में कैंसर के रोग से पीड़ित थे। रोग से पीड़ित रहे सरल जी ने रोग अवधि में भी स्वाध्याय व लेखन का कार्य किया और स्थानीय व निकटवर्ती स्थानों की धर्म प्रचार के कार्यार्थ यात्राएँ की। वर्ष 2024 के अजमेर के ऋषिमेले में भी वे सम्मिलित हुए थे। आज उनकी 78वीं जयन्ती है।

उत्तराखण्ड राज्य का हरिद्वार जनपद में पवित्र गंगा नदी के तट पर निरंजनपुर ग्राम स्थित है। यह ग्राम लम्बे समय तक धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से अज्ञान, अविद्या व पाखण्डों से ग्रस्त था। सौभाग्य से ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने देश में जो धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति सहित समग्र क्रान्ति की, उससे यह ग्राम भी प्रभावित होकर आलोकित हो उठा। 15 अप्रैल, सन् 1925 को ग्राम निरंजनपुर में आर्यसमाज की स्थापना हुई आर्यसमाज के प्रचार से इस ग्राम में अन्धविश्वास एवं अविद्या की नींव हिल गई और यहाँ के अनेक निवासियों ने आर्यसमाज की विचारधारा को अपना लिया था।

इस निरंजनपुर ग्राम में ही हमारे ऋषिभक्त भजनोपदेशक श्री सत्यपाल 'सरल' जी का जन्म 2 मई, सन् 1947 को माता बिरमो देवी एवं पिता श्री सीताराम आर्य के यहाँ हुआ। आपने प्राथमिक शिक्षा अपने ग्राम में ही प्राप्त की। इसके बाद की शिक्षा प्राप्त करने का ग्राम में कोई प्रबन्ध नहीं था। आपके पिता यद्यपि अनपढ़ थे परन्तु वे धार्मिक, भावनाशील, शिक्षा–प्रेमी एवं आर्यसमाज की विचारधारा व सिद्धान्तों से प्रभावित थे। वे अपने इस पुत्र को शिक्षित कर योग्य पुरुष बनाना चाहते थे। प्रवर आर्य भजनोपदेशक श्री बृजपाल शर्मा 'कर्मठ' जी से आपके निकट संबंध थे। आपने अपने पुत्र सत्यपाल को उनके पास अध्ययन आदि करने के लिए भेज दिया। आपने उनके साथ रहते हुए हाईस्कूल और बी.टी.सी. किया और इसके साथ ही वेद प्रचार की संगीतमयी विद्या में निपुण हुए। इसके बाद आप सर्वात्मा भजनोपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

ऋषि भक्त श्री सत्यपाल 'सरल' 7 नवम्बर, 1966 ईसवी को दिल्ली में गोरक्षा आन्दोलन में सोत्साह सम्मिलित हुए थे और गोरक्षा आन्दोलन की सफलता के लिए किए गए संसद भवन के घेराव में भी आप सम्मिलित थे। आपने इससे पूर्व गाँव–गाँव में जाकर युवकों को गोरक्षा आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया था। श्री सरल जी ने भजनोपदेशक के रूप में आर्यसमाज की प्रशंसनीय सेवा की है। आपने अपने गाँव में आर्य वीर दल की स्थापना 1 जनवरी सन् 1969 को की। आपके उत्साहवर्धक कार्यों से प्रभावित होकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश आर्य वीर दल के संचालक श्री बाल कृष्ण विकल ने आपको मेरठ मण्डल का संचालक नियुक्त किया था।

श्री सत्यपाल सरल जी का विवाह श्रीमती सुशीला देवी जी के साथ 20 मई सन् 1972 को हुआ था। श्रीमती सुशीला जी धर्मपरायणा एवं मृदु भाषी गृहिणी होने के साथ अपने नाम के अनुरूप सुशील स्वभाव की धनी हैं। सरल जी के दो पुत्र श्री अवनीश आर्य एवं नवनीत आर्य हैं और पुत्र वधुएँ क्रमशः श्रीमती संगीता आर्या और श्रीमती मीनाक्षी आर्या हैं। आपका परिवार तीन पौत्रों से भी समृद्ध एवं सुशोभित है। परिवार के सभी सदस्य ऋषिभक्त हैं एवं वैदिक विचारधारा का श्रद्धापूर्वक अनुसरण करते हैं।

मार्च 2018 में एक भेंट में हमने श्री सरल जी से उनके निजी जीवन पर बात की थी। हमने अनुभव किया कि सरल जी वैदिक सिद्धान्तों पर अटूट आस्था एवं विश्वास रखते थे। वैदिक सिद्धान्तों में गहरी आस्था के कारण विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धान्तों का पालन किया था। जब उनके पिता की मृत्यु हुई तो उनके परिवारजनों एवं संबंधियों ने उन पर पौराणिक मान्यताओं के अनुसार हरिद्वार में गंगा नदी में अस्थियाँ प्रवाहित करने का दबाव बनाया था। उन्होंने सरलजी को तेरहवीं सहित ब्रह्मभोज तथा पगड़ी आदि की रस्म करने का परामर्श भी दिया था। सरल जी ने अपने संबंधियों के परामर्शों को सुना और उन्हें अस्वीकार कर दिया था। सरल जी ने उन्हें उत्तर दिया था कि वह सभी कार्य वैदिक सिद्धान्तों व रीतियों के अनुसार करेंगे। सरल जी का यह उत्तर सुनकर उनके कुटुम्बीजन उनसे नाराज़ हो गए थे। उन्होंने वैदिक मान्यताओं के अनुसार क्रियाएँ करने के कारण उनका बहिष्कार किया। इस पर भी सरल जी ने वैदिक मार्ग का ही अवलम्बन किया। उन्होंने इस अवसर पर किसी भी पौराणिक कर्मकाण्ड को स्वीकार नहीं किया और सभी कार्य वैदिक रीति के अनुसार सम्पन्न किए गए। सरल जी अपने उन निकट सबंधियों से भी दूरी बनाकर रखते थे जो मदिरापान आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त थे। हमारी परस्पर निकटता के कारण हमें इन बातों का ज्ञान रहा है।

श्री सरल जी के आचार–विचारों से प्रभावित होकर ग्राम निरजंनपुर के एक बड़े ज़मींदार ने आर्यसमाज के लिए अपनी भूमि दान में दी। इस भूमि पर आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ। सरल जी ने सन् 2000 में देहरादून में श्री मद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल, पौन्धा की स्थापना के समय से गुरुकुल को अप्रैल व मई के दो महीनों का समय देना आरम्भ किया था। इस अवधि में वह गुरुकुल के आचार्य धनंजय जी के साथ निकटवर्ती राज्य हरियाणा, उत्तरप्रदेश व इन राज्यों के ग्रामों में जाकर अन्न संग्रह का कार्य कराया करते थे। उन्होंने अपने परिचित आर्य परिवारों से भी आचार्य जी का परिचय कराया था जिससे उन्हें उनसे अन्न व धन की सहायता प्राप्त होती रहे। ये सब लोग गुरुकुल से जुड़े थे और इन्होंने गुरुकुल के उत्सवों में भी सोत्साह आना आरम्भ किया था।

आर्यसमाज के सच्चे विद्वान् भजनोपदेशकों ने अतीत में बिना किसी ऐषणा के गाँव–गाँव में आर्यसमाज खड़े किए। दुर्भाग्य से ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व ऋषिभक्तों की आर्यसमाज ने उपेक्षा भी की है। आर्यसमाज के भजनोपदेशकों का उत्साह एवं स्वाभिमान बना रहे, इस पवित्र भावना से श्री सत्यपाल सरल जी ने ***'आर्य भजनोपदेशक समिति'*** नामक संगठन की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई समिति की स्थापना के आरम्भ के दिनों में इस संगठन ने सराहनीय कार्य किए, यह बात हमें सरल जी ने अपनी भेंट में बतायी थी। बाद में किन्हीं कारणों से इस समिति की गतिविधियाँ शिथिल हो गईं थी।

श्री सरल जी अपने ग्राम निरंजनपुर से अक्तूबर, 1985 में देहरादून आए और यहीं पर परिवार सहित निवास करने लगे। अपने ग्राम निरंजनपुर से भी उनका सम्पर्क बना रहा। देहरादून के आर्यसमाज से जुड़े सभी बन्धु उनका सम्मान करते थे। आपके ग्राम निरंजनपुर में जब भी आर्यसमाज का कोई कार्यक्रम होता था, सरल जी उसमें सम्मिलित होते थे।

श्री सरल जी का भजन एवं उपदेशों द्वारा आर्यसमाज का प्रचार केवल मनोरंजन के लिए नहीं था अपितु इसके माध्यम से वे आर्यों को असत्य का त्याग करने, ईश्वर उपासना के लिए प्रेरित करने सहित सब श्रोताओं को राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा करते थे। भजनों में सुन्दर प्रभावशाली शब्द व वाक्यों का चयन एवं उनका प्रभावपूर्ण प्रस्तुतिकरण मनुष्य के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम होता है। इसको अपने विचारों व भावनाओं के केन्द्र में रखकर ही वे ऋषि मिशन के प्रचार के कार्य में प्रयत्नशील रहे। आपकी कविताओं की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ समय पूर्व वाल्मीकि रामायण पर आधारित श्री रामचन्द्र जी के चरित पर भी उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें उन्होंने अपनी निज–कविताओं में भी श्री रामचन्द्र जी का चरित्र–चित्रण किया है।

कुछ वर्ष पूर्व सरल जी को प्रोस्टेट कैंसर का रोग हुआ था। अंग्रेज़ी चिकित्सा सहित अन्य अनेक देशी चिकित्सा पद्धतियों से भी उनका उपचार कराया गया। उनके दोनों पुत्रों

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आर्यसमाज के 150 वर्ष पूरे होने पर

आर्यसमाज के संघर्ष युग में समाज का चौमुखा विकास

● पं. इन्द्र विद्या वाचस्पति

उस समय का उमंगपूर्ण जीवन :– वह आर्यसमाज का यौवन काल था। संस्था की धमनियों में नया रक्त बह रहा था। 1899 ई. में बिहार और मध्यप्रदेश में भी प्रतिनिधि सभाओं की स्थापना हो गई। प्रतिनिधि सभा की स्थापना का अभिप्राय यह होता था कि प्रान्त में समाज के विचार और शिक्षा के कार्य का एक प्रबल केन्द्र बन गया। केन्द्र के स्थापित हो जाने पर उसके चारों ओर व्याख्यान, शास्त्रार्थ, वार्षिकोत्सव, कन्या पाठशाला स्कूल आदि का प्रवाह होने लगता था। प्रत्येक कार्य में उत्साह था और जीवन था। **यदि हम सब प्रान्तों और उसकी सब समाजों के कार्यों का विस्तार से वर्णन करें तो पूरा महाभारत बन जाएगा।** इसलिए हम कुछ चुने हुए दृष्टान्त उपस्थित करके पाठकों को उस समय के उमंगपूर्ण जीवन की झाँकी दिखा कर ही सन्तोष करेंगे।

{पं. इन्द्रजी की ये पंक्तियाँ एक कठोर सत्य है। बड़े–बड़े नगरों के समाजों के इतिहास के प्रसंग छोड़िए, छोटे– छोटे समाजों के इतिहास के प्रसंग पढ़कर व्यक्ति फड़क उठता है। अनायास मुख से निकलता है, ये समाजी किस मिट्टी के बने थे! इतने साहसी ! इतने परोपकारी लोग! –'जिज्ञासु'}

आर्यसमाज मेरठ के नवें वार्षिकोत्सव का वृत्तान्त हम 'आर्य समाचार' मेरठ से उद्धृत करते हैं:

कोटानुकोट धन्यवाद है उस परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, परमदयालु परमात्मा का कि जिसकी कृपालुता और दयालुता से कायम हुए 9 वर्ष कुशलपूर्वक व्यतीत हो गए। गतवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सालगिरह मनाने के लिए 26 वा 27 दिसम्बर 1887 ई. को वार्षिकोत्सव यानी जन्मोत्सव मनाया गया। शहर और कैन्ट में विज्ञापन प्रकाशित किए गए थे और बाहर के समाजों को भी निमन्त्रण भेजे गए थे। 25 दिसम्बर 1887 से सज्जन धर्मात्मा परोपकारी आर्यपुरुषों की आमद – आमद शुरू हुई और रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत किया गया। जिन–जिन भद्रपुरुषों ने पधार कर रौनक बख्शी, उनके नाम ये हैं :–

मुं. गोमती प्रसाद साहब, सेक्रेटरी आर्यसमाज चकरौता से, ला. मुसद्दी लाल व पं. शंकर लाल साहब, आर्यसमाज खरड़, जिला मुजफ्फरनगर से, लाला गंगासहाय साहब व ला. रामदास साहब, बछरावन जिला मुरादाबाद से, पं. रघुनाथ दास साहब, उपमन्त्री आर्यसमाज शिमला से, चौ. खुशहालसिंह साहब, मन्त्री, चौ. बुधसिंह साहब, बाबू बिहारी लाल साहब, मुजफ्फरनगर से, ला. बंशीलाल साहब, पं. दिलीप सिंह साहब, पं. जगन्नाथ साहब, मुन्शी प्यारेलाल साहब व डॉक्टर दीनामल साहब व पं. भगवान दास साहब, देहली से, ला. हरदयाल सिंह साहब, पुस्तकाध्यक्ष मुल्तान से, ला. सुन्दरलाल साहब, ला. दौलत राम साहब, मा. कूडामल साहब और ला. बुधसिंह साहब ओवरसियर, सहारनुपर से, बा. गोपीचन्द साहब मन्त्री, ला. शालिगराम साहब, ला. कालीचरण साहब, पुस्तकाध्यक्ष, ला. नत्थूलाल साहब तथा ला. छोटूमल साहब, सदस्य, कालका से, पं. गुरुदत्त साहब, लाहौर सेय चौधरी चन्दन सिंह साहब, चौ. भरतसिंह साहब, और चौ. फतहसिंह साहब, ढकोली, जिला मेरठ से, ला. घासीराम साहब, ला. शंकरलाल साहब, ला. मथुरा दास साहब, मन्त्री, ला. नत्थूलाल साहब, ला. शिवदयाल सिंह साहब, ला. जगन्नाथप्रसाद साहब, ला. उमराव सिंह साहब, ला. प्यारेलाल साहब और ला. बाँकेराम साहब, आर्यसमाज, गाजियाबाद (मेरठ) से; मुन्शी बैनीप्रसाद साहब, लाला किशोरी लाल साहब, मुन्शी गोपालसहाय साहब, मुन्शी रतीराम साहब, आर्यसमाज जलालाबाद, जिला मेरठ से; पंडित दिलीप सिंह साहब, गोविन्दपुरी से; पं. जुगल किशोर साहब, मौजा पूँठ से; ला. गनेशी लाल साहब और ला. रामचन्द्र साहब, बेगमाबाद, जिला मेरठ से; चौ. हंसराज साहब, वसोखा से; ला. घासीराम साहब, ला. फकीरचन्द साहब व ला. हजारीलाल साहब, पुस्तकाध्यक्ष, ला. देवीसहाय साहब, बालमुकुन्द साहब, ला. छज्जू सिंह साहब, पं. झब्बन लाल साहब व ला. गंगा सहाय साहब आर्यसमाज परिक्षितगढ़ जिला मेरठ से। **{कितनी श्रद्धा, जोश, लगन व प्रीति थी। दूर–दूर से इतने सज्जन पधारे। 'जिज्ञासु'}**

समाज का मकान बन्दनवारों से, फर्शपरोश वगैरह से खूब सजाया गया था। 26 दिसम्बर सन्, 1887 को 8 बजे सुबह से हवन शुरु हुआ और दस बजे समाप्त हुआ। खुशबूदार आहुतियों की लपट यज्ञमण्डप को ताजगी देती थी। हवन समाप्त होने के पश्चात् पं. शिवप्रसाद साहब अध्यापक, आर्यसमाज मेरठ ने हवन के लाभ बहुत सुन्दरता से बयान किए.....!

इसके बाद ऐंग्लो वैदिक स्कूल, आर्यसमाज मेरठ के छात्रों ने वेदमन्त्र पढ़े और एक लड़की ने स्त्री–शिक्षा पर एक भाषण दिया जो इस कुमारी कन्या की बारीक और मीठी आवाज से बहुत मनोहर मालूम होता था। यह कन्या पाठशाला डॉक्टर रामचन्द्र साहब असिस्टैण्ट सेक्रेटरी आर्यसमाज, मेरठ की परोपकार – निष्ठा और सच्ची देशहितैषिता से उन्हीं के मकान पर कुछ दिनों से स्थापित है और इसका कुल खर्च, किताब व स्लेट व पैंसिल व कलम व रोशनाई आदि का, डॉक्टर साहब ही अपनी जेब से खर्च करते हैं और उनकी धर्मपत्नी लड़कियों को पढ़ाती हैं। ये सब लड़कियाँ आठ–नौ वर्ष से ज्यादा उमर की नहीं, बल्कि कुछ तो सात साल तक की हैं। **{स्त्री शिक्षा के लिए किसी और संस्था ने इतना त्याग, उत्साह, प्रेम व सेवा भाव दिखाया हो, इसका उदाहरण हिन्दू समाज नहीं दे सकता 'जिज्ञासु'}**

तीन बजे से लैक्चरों का समय था। दो बजे से मेहमानों और सभासदों के अतिरिक्त शहर और छावनी के बहुत–से सज्जन उत्सव – मण्डप में आने लगे, जिससे कि समाज मन्दिर जो एक बड़ा मकान है भर गया। नियत समय पर परमात्मा की प्रार्थना उपासना के पश्चात् कालका समाज की भजन मंडली ने भजन गाए। फिर पहले बाबू अयोध्या प्रसाद साहब मैम्बर, वैश्य उन्नति सभा, मेरठ ने स्त्री–शिक्षा पर एक अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान देकर यह सिद्ध कर दिया कि स्त्रियों की शिक्षा के बिना हमारे देश का सुधार नहीं हो सकता। इसके पश्चात् जनाब पं. गुरुदत्त साहब एम.ए. ने आर्यसमाज के असूल की खूबी और उसके अनुसार पूरा–पूरा आचरण करने से **मनुष्य को जो लाभ पहुँच सकते हैं उनका वर्णन जिस खूबी और सच्चे जोशो–खरोश मुल्की व कौमी हमदर्दी के साथ किया, उसका ठीक–ठीक चित्र खींचना हमारी जिह्वा और लेखनी की शक्ति से बाहर है।** उसकी खूबी वही लोग समझ सकते हैं जिन्होंने उसको सुना है। पं. गुरुदत्त साहब एक बहुत बड़े जबरदस्त लायक–फायक और मशहूर लैक्चरार हैं। अगर ऐसे पुरज़ोर लैक्चरार मुल्क व कौम के सच्चे खैरख्वाह दस–पाँच और भी हों तो आर्यावर्त की काया आनन–फानन में पलट जाए।..... यह व्याख्यान ऐसा प्रभावशाली था कि ला. मुसद्दी लाल साहब मैम्बर आर्यसमाज खरड़, जिला मुजफ्फरनगर ने उसकी तौसीफ उसी वक्त बयान की और पंडित जी महाराज के चरण छूकर अपनी श्रद्धा प्रकट की। इस लैक्चर के पश्चात् मुन्शी प्यारेलाल साहब आर्यसमाज, दिल्ली ने एक भजन ऐसी सुन्दरता से गाया कि जिसे सुन कर श्रोता दंग हो गए.....।

"27 दिसम्बर के प्रातः काल आर्यसमाज, मेरठ के सदस्यों ने बाहर से आए हुए कुछ सदस्यों से भेंट की। उस समय जो सच्चे प्रेम और मुहब्बत का इजहार होता था, आर्य भाइयों में ऐसा स्वाभाविक दिली प्रेम पाया जाता था जो भाइयों को हुआ करता है और परस्पर एकता का छोटा–सा नमूना है, और क्यों न हो जब विचार और विश्वास एक से हों तो परस्पर मेल न होने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।.... इसके पश्चात् स्वामी ईश्वरानन्द जी महाराज ने सामवेद के मन्त्रों का गायन साज के साथ किया जिसे सुनकर श्रोता बहुत ही खुश हुए। सचमुच स्वामी जी महाराज ने इस फन में बड़ी योग्यता प्राप्त की है।....."

मेरठ समाज के नवें वार्षिकोत्सव का लगभग पूरा वृत्तान्त देने से मेरा अभिप्राय यह दिखाना है, कि उस समय के आर्यसमाजियों में नवयौवन का सा उत्साह और आशावाद था। मैंने उत्सव वृत्तान्त की भाषा में शाब्दिक परिर्वतन किए हैं, वे केवल पाठकों की सुविधा के लिए। भाषा की उमंग को जैसा–का – तैसा रहने दिया। सारे वर्णन में परस्पर प्रेम, धार्मिक भावना और प्रत्येक अच्छी वस्तु की दिल खोलकर प्रशंसा करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उस समय के आर्य समाचारपत्रों में अन्य बड़े–बड़े

वार्षिकोत्सवों के जो वृत्तान्त मिलते हैं वे भी लगभग इसी उत्साह और आशावाद से पूर्ण हैं।

1. संन्यासी तथा प्रचारक

नित्यानन्द स्वामी :– इस युग के प्रचारकों में से स्वामी ईश्वरानन्द जी और पं. लेखराम जी के पश्चात् ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी (जो पीछे स्वामी नित्यानन्द जी कहलाए) और स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्र. नित्यानन्द जी का जन्म जोधपुर रियासत के जालोर नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने संन्यास लेकर स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी को अपना गुरु धारण किया। ये दोनों ही विद्वान् संन्यासी एकाग्रचित्त होकर आर्यसमाज के प्रचार कार्य में लग गए और जीवन भर इसी कार्य में लगे रहे। **{महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों व जीवन की छाप काशी में अध्ययन करते हुए दोनों पर लगी। सन् 1884 में अजमेर आकर परोपकारिणी सभा से जुड़कर समाज सेवा में आगे बढ़ते गए। दूर दक्षिण तक सब प्रदेशों में इन्होंने प्रचार यात्राएँ कीं। 'जिज्ञासु'}**

इनका प्रचार कार्य देशभर में व्याप्त था। जहाँ आवश्यकता होती थी वहीं पहुँच जाते थे। पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेश और राजपूताना इनके विशेष कार्यक्षेत्र थे। स्वामी नित्यानन्द जी का बूँदी का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है जिसमें उन्होंने अद्वैतवाद के समर्थक वेदान्तियों की शंकाओं का समाधान किया था। विरोधी लोग इनकी युक्तियों से इतने घबराए कि उन्हें रियासत के बाहर निकालने के लिए राजा का द्वार खटखटाना पड़ा।

धीरे–धीरे स्वामी नित्यानन्द जी की विद्वत्ता की धाक देश भर में जम गई। स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और उनकी ओर से प्रकाशित **'पुरुषार्थ प्रकाश'** नाम की पुस्तक ने आर्यजगत् में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की। रियासतों के शासकों में आपका विशेष सम्मान हुआ। इन्दौर, बड़ौदा, उदयपुर, मैसूर आदि रियासतों के शासक स्वामी नित्यानन्द जी को गुरु के समान मानते थे। मैसूर नरेश पर आपके उपदेशों का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने विधिपूर्वक वैदिक धर्म को स्वीकार करके वैदिक धर्म वर्द्धिनी सभा का प्रधान बनना भी अंगीकार कर लिया।

आपने काश्मीर में कई दिनों तक वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिए। इनका उस समय के काश्मीर नरेश पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे काश्मीर के मुसलमानों को आर्यधर्म में वापिस लेने के लिए तैयार हो गए परन्तु काशी के पण्डितों ने शुद्धि के विरुद्ध व्यवस्था दे दी, जिससे देश की एक बड़ी समस्या हल होते–होते रह गई। स्वामी जी बहुत उद्भट विद्वान् होने के साथ ही प्रभावशाली वक्ता भी थे। आगे चलकर उन्होंने वेद सम्बन्धी अनुसन्धान के कार्य का जो बीजारोपण किया वह अब होशियारपुर में 'वैदिक अनुसन्धान' **{विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान}** के केन्द्र के रूप में फलफूल रहा है।

स्वामी दर्शनानन्द :– पं. कृपाराम जी जो पीछे से स्वामी दर्शनानन्द जी के नाम से प्रख्यात हुए, इसी युग में प्रचार क्षेत्र में उतरे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अरबी, फारसी में हुई थी। हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास उन्होंने स्वयं किया। छोटी उम्र से ही इनकी प्रवृत्ति वैराग्य और धार्मिक कामों की ओर थी। इनके पिता ने इन्हें एक दुकान खोल दी थी, जिसका नाम इन्होंने 'सच्ची दुकान' रखा।

{इनकी सच्ची दुकान का ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ा कि कई नगरों में व्यापारियों ने ' सच्ची दुकान' नाम की दुकानें खालीं। ऐसे विज्ञापन उस काल के पत्रों में बहुत देखे गए हैं। 'जिज्ञासु'}

सच्चे व्यवहार से दुकान को लाभ तो हुआ परन्तु कृपाराम जी का धार्मिक जोश उन्हें काशी घसीट ले गया जहाँ उन्होंने व्याकरण और दर्शन का अध्ययन किया। उसके पश्चात् आप आर्यसमाज के प्रचार में लग गए। लेख द्वारा प्रचार करने की धुन में एक प्रेस चलाया। ***'तिमिर नाशक'*** नाम का एक पत्र भी निकाला और पुस्तकें तो अनेक प्रकाशित कीं। इन सब कार्यों में आपने हजारों रुपयों की हानि उठाई परन्तु धर्म की ऐसी धुन थी कि कभी आर्थिक हानि की चिन्ता न की। उस युग के प्रचारकों में जोश और तर्क शक्ति की दृष्टि से आपका स्थान बहुत ऊँचा था।

पं. गणपति शर्मा :– इस युग के आर्य विद्वानों में पं. गणपति शर्मा का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। आप बीकानेर राज्य के चूरू नामक स्थान के रहने वाले थे। आपने काशी में विद्याध्ययन किया। आप उद्भट विद्वान् और कुशल वक्ता थे। शास्त्रीय विषयों की व्याख्या और शास्त्रार्थों में आपका लोहा विपक्षियों ने भी मान लिया था। आप स्त्री–शिक्षा के प्रबल पक्षपाती और परदा सिस्टम के घोर विरोधी थे।

पं. आर्यमुनि जी :– पं. आर्यमुनि जी ने वैदिक साहित्य को सर्वसाधारण तक पहुँचाने में बहुत ही असाधारण सफलता प्राप्त की थी। आपने सभी दर्शनों और उपनिषदों के हिन्दी भाष्य करके हिन्दी जानने वालों को भारतीय साहित्य का आनन्द लेने और उससे परिचित होने का अवसर दिया था। आपके इस साहित्यिक कार्य का आर्यजगत् में तो आदर हुआ ही, उस समय की सरकार ने भी उसे बहुत आदरणीय समझा और पंडित जी को महामहोपाध्याय की पदवी से सुभूषित किया।

{आपने अरबों रुपए की गुरु गद्दी रुमाना (बठिण्डा के पास) ऋषि मिशन पर वार दी। मैंने श्री जितेन्द्रजी गुप्त के साथ वह विशाल संस्था सम्पदा देखी है। – 'जिज्ञासु'}

प्रारम्भ से ही आर्यसमाज के प्रचारकों में संगीत द्वारा प्रचार करने वालों का विशेष स्थान रहा है। यों तो उस युग में धार्मिक संगीत और प्रचार, दोनों ही केवल गायकों तथा प्रचारकों तक परिमित नहीं थे। प्रायः सभी आर्य नर–नारी ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते थे और प्रार्थना मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य उपदेशात्मक भजनों को याद करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। यही कारण था कि उस समय साप्ताहिक सत्संगों और वार्षिकोत्सवों पर उतने उपदेशकों और संगीत शास्त्रियों के उपदेश और भजन नहीं होते थे कि जितने आर्यसमाज के साधारण सभासदों के। ईश्वर भक्ति के भजन गाने के लिए उस समय के आर्यसमाजों को भजनीकों का मुँह नहीं देखना पड़ता था। मेरठ के नवें वार्षिकोत्सवों का जो वृत्तान्त हमने आरम्भ में दिया है उससे पता चलता है कि उत्सव पर संगीत का खाना पूरा करने के लिए किसी भजनीक की आवश्यकता नहीं पड़ी। आर्यसभासदों ने स्वयं ही यह कार्य पूरा कर लिया।

परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उस युग में संगीत द्वारा आर्यसमाज की सेवा करने वालों का सर्वथा अभाव था। सभी प्रान्तों में कुछ ऐसे सज्जन विद्यमान थे जो अपनी कवित्व शक्ति और गानशक्ति द्वारा आर्यसमाज की सेवा करते थे। पंजाब में भक्त अमीचन्द अपने भक्तिपूर्ण भजनों और मधुर कंठ से, चौधरी नवलसिंह ओजस्वी संगीत और सिंह गर्जना से तथा माई भगवती उपदेशात्मक और घरेलू गानों द्वारा आर्यसमाज की सेवा करने में संलग्न थे।

{हरियाणा क्षेत्र में गाँव–गाँव में पं. बस्तीराम जी के भजनों से आर्यसमाज की धूम मच गई। 'जिज्ञासु'}

इस अध्याय में आर्यसमाज लाहौर के एक वार्षिकोत्सव का सक्षिप्त विवरण देकर समाप्त करुँगा। उससे आर्यसमाज की उस युग की प्रवृत्तियों और बढ़ती हुई लोकप्रियता का आभास मिलेगा। सन् 1899 में आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव का महत्त्व केवल पंजाब तक ही परिमित नहीं था वह उससे बहुत आगे बढ़ गया था। उत्सव नगर कीर्तन से आरम्भ हुआ। उसमें पंजाब और उत्तर प्रदेश की अनेक भजन मण्डलियों ने भाग लिया। सिकन्दराबाद की भजन मंडली की धूम रही। उसके चारों ओर जनता की असाधारण भीड़ रहती थी। पंजाब निवासियों के लिए उस भजन मंडली के खड़ताल के साथ गाए हुए भजन बहुत ही आकर्षक सिद्ध हुए।

25 नवम्बर को प्रातः आर्यसमाज मन्दिर में उत्सव आरम्भ हुआ। नर–नारियों से सारा समाज मन्दिर भर गया। उत्सव का समाचार लिखने वालों ने लिखा है:

परदे के लिए चिक नहीं थे :– कार्यवाही आरम्भ होने से पहले तमाम सेहन और हाल में पैर रखने तक को जगह न रही। हाल में सिर्फ स्त्रियों की निशस्त का प्रबन्ध किया गया था। **परदे के लिए चिकें नहीं लगाई गई थीं।** एक तरफ पुरुष बैठे थे और दूसरी तरफ स्त्रियाँ।

प्रारम्भ में हवन हुआ। फिर प्रार्थना के पश्चात् ईश्वर–दर्शन पर ला. बख्शीराम जी का व्याख्यान हुआ। उसके पश्चात् कन्या महाविद्यालय जालन्धर की कन्याओं ने भजन गाए जिनको सुनकर श्रोतागण अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुनः श्रीमान् देवराज जी का आलिमाना और मुअस्सर व्याख्यान 'स्त्री जाति की पतित दशा और उसके सुधार और उद्धार' पर हुआ। **इस व्याख्यान में लाहौर के अन्य शिक्षित नागरिकों के अतिरिक्त कुछ यूरोपियन प्रोफेसर भी अपनी पत्नियों के साथ आए थे।** व्याख्यान के पश्चात् लाहौर के दृढ़ आर्यसमाजी बैरिस्टर श्रीमान् रोशनलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती हरदेवी ने कन्याओं को पारितोषिक वितरण किए। उसी समय यह घोषणा भी की गई कि श्रीमती हरदेवी जी ने अपनी सारी निजी जायदाद, जिसका मूल्य 25–30 हजार के लगभग है, कन्या महाविद्यालय के नाम वसीयत कर दी है। इस समाचार

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

संस्कृत शोध की धरोहरः वेदवाणी शोधपत्रिका का गौरवशाली सफर, वेद से विज्ञान तक, 78 वर्षों का अविरल प्रकाशन

संस्कृत एवं भारतीय ज्ञान परम्परा के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान देने वाली वेदवाणी शोधपत्रिका आज भी अपनी प्रतिष्ठा एवं प्रामाणिकता के साथ शोधजगत् का मार्गदर्शन कर रही है। यह शोधपत्रिका संस्कृत की दृष्टि से भारतवर्ष की सबसे प्राचीन पत्रिकाओं में अग्रगण्य है। सन् 1948 में प्रारम्भ यह शोधपत्रिका भारतीय पत्रिकाओं में अपनी दीर्घकालीन सातत्यपूर्ण प्रकाशन–परम्परा के लिए विशिष्ट स्थान रखती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त (ढद्स्स्ह 2457–0141) वेदवाणी एक मासिक शोधपत्रिका है, जो विगत 78 वर्षों से अविराम प्रकाशित हो रही है।

वेदवाणी का प्रकाशन सुप्रसिद्ध रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा किया जाता है और यह हर महीने की प्रथम तिथि को समर्पित भाव से शोधार्थियों तक पहुँचाई जाती है। इसमें वेद, वैदिक साहित्य, दर्शन, वेदाङ्ग तथा भारतीय ज्ञान परम्परा से सम्बंधित उच्चस्तरीय, प्रामाणिक तथा शोधपरक लेख प्रकाशित किए जाते हैं, जो आध्यात्मिक, सामाजिक एवं अकादमिक दृष्टिकोण से अत्यंत उपयोगी हैं।

पत्रिका के प्रधान सम्पादक सुप्रसिद्ध वैयाकरण प्रदीप कुमार शास्त्री हैं। सम्पादक मण्डल में देश के विभिन्न भागों से प्रतिष्ठित विद्वान जुड़े हैं, जिनमें हरिद्वार से प्रो. राम प्रकाश वर्णी एवं प्रो. दिनेश चन्द्र शास्त्री, हरियाणा से राम कुमार शास्त्री एवं विश्वम्भर शास्त्री, प्रयागराज से प्रो. देवदत्त सरोदे, अजमेर से चेयर प्रोफेसर नरेश धीमान, दिल्ली से डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, इग्नू से डॉ. अवधेश कुमार एवं जम्बू से डॉ. सत्यप्रिय आर्य सम्मिलित हैं।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस पत्रिका का व्यापक प्रचार–प्रसार है। डॉ. अवधेश कुमार के अनुसार, वेदवाणी शोधपत्रिका अपनी गौरवशाली प्राचीनता के साथ–साथ समकालीन शोध मानकों एवं दिशानिर्देशों का भी पूर्णतः पालन करती है।

हाल ही में यूजीसी ने यूजीसी–केयर जर्नल सूची को समाप्त करते हुए शोधपत्रिकाओं के चयन हेतु नई नियमावली और नए दिशा–निर्देश जारी किए हैं। इस निर्णय का उद्देश्य शोध–गुणवत्ता में अभूतपूर्व सुधार लाना, शोध–प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाना तथा शोधार्थियों को स्वतंत्र एवं उपयुक्त प्रकाशन विकल्प उपलब्ध कराना है। यूजीसी ने स्पष्ट किया है कि अब वही शोधपत्रिकाएँ मान्य होंगी जो गुणवत्ता, पारदर्शिता एवं इन नए मूल्यांकन प्रक्रियाओं पर खरी उतरती हों। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा जारी इन नवीन दिशा– निर्देशों के आलोक में, वेदवाणी शोधपत्रिका पूर्णतः निर्धारित मानकों का पालन करती है। इन उच्च मानकों के अनुरूप कार्य करते हुए, वेदवाणी आज शोधार्थियों एवं विद्वानों के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय प्रकाशकीय मंच बन गई है। यहाँ प्रत्येक शोधलेख चयनित करने से पूर्व गहन परीक्षण एवं सम्यक् पीयर–रिव्यू प्रक्रिया से गुजरता है, जिससे पत्रिका की विद्वत्तापरकता और प्रामाणिकता अक्षुण्ण बनी रहती है। इसी कारण शोध–पत्र प्रकाशन हेतु लेखकों की एक दीर्घ प्रतीक्षा सूची सदैव बनी रहती है। वेदवाणी शोधपत्रिका ने इन सभी मानकों को सम्यक आत्मसात करते हुए शोध–जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान और सर्वोच्च स्थान सुनिश्चित किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वेदवाणी शोधपत्रिका संस्कृत तथा भारतीय ज्ञान परम्परा के क्षेत्र में शोधार्थियों, अध्येताओं एवं विद्वानों के लिए एक अमूल्य निधि सिद्ध हो रही है, जो अपनी प्रामाणिकता, उत्कृष्टता एवं सतत नवाचार के साथ शोध–जगत् को समृद्ध कर रही है।

(आधुनिक राजस्थान) कृष्ण चतुर्वेदी, नई दिल्ली

☞ पृष्ठ 07 का शेष

आर्यसमाज के संघर्ष ...

से जनता बहुत प्रसन्न हुई और करतल ध्वनि से सभा स्थान गूँज उठा। **{किसी महिला द्वारा आर्यसमाज को दान की यह ऐसी पहली घटना थी। किसी सभा में यह हरदेवी जी का पहला भाषण था। जिज्ञासु}**

दोपहर बाद की कार्यवाही में पहले धर्म–चर्चा हुई जिसमें मा. आत्माराम जी ने एक नास्तिक के प्रश्नों के उत्तर दिए। उसके पश्चात् श्रीमान् ला. मुन्शीराम जी का फाजिलाना व्याख्यान 'वेद ईश्वरीय ज्ञान है' इस मजमून पर हुआ।.... जब तक व्याख्यान होता रहा श्रोतागण तस्वीर की तरह बेहस औ हरकत बैठे रहे।

जो पाक और आला असर इनके फाजिलाना व्याख्यान ने हाजरीन के दिलों पर डाला उसका ठीक–ठीक अन्दाजा वही साहबान लगा सकते हैं कि जिन्होंने इस व्याख्यान को दत्तचित्त होकर श्रवण किया हो।

"दूसरे दिन की कार्यवाही के आरम्भ में ला. देवराज जी का मनोहर सरमन हुआ और उसके पश्चात् मेरठ के श्रीमान् पं. तुलसीराम जी स्वामी, सम्पादक, रसाला 'वेदप्रकाश', का फाजिलाना व्याख्यान 'सच्चे सुख की प्राप्ति' पर हुआ। यह व्याख्यान इतना युक्तिसंगत और विद्वत्तापूर्ण था कि श्रोतागण बहुत ध्यान से उसे सुनते रहे। उसके पश्चात् मा. आत्माराम जी ने वेद प्रचार फंड के लिए अपील की जिस पर वेद प्रचार फंड, गुरुकुल और महाविद्यालय वगैरह के लिए दो हजार पाँच सौ रुपए नकद एकत्र हुआ। (इस पर टिप्पणी करते हुए संवाददाता ने लिखा है– **"इस कदर चन्दा गुजस्ता चार–पाँच सालों में कभी नहीं हुआ था।)"**

इस वृत्तान्त में हमने 'सद्धर्म प्रचारक' से जो उद्धरण दिए हैं उनमें ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि उनकी भाषा में संस्कृत और उर्दू के शब्दों का अद्भुत मिश्रण है। पंजाब की इस उर्दू का जन्मदाता सद्धर्म प्रचारक था।

{प्रयाग के उर्दू के जाने माने उस युग के आर्य कवि श्री 'बिस्मिल' इलहाबादी ने तब लिखा था कि हमारे पंजाब के आर्यसमाजी भाइयों ने तो पंजाब की जबान को 'भाषा' बना दिया है। लिपि उर्दू होती थी परन्तु भाषा हिन्दी होती थी। तब हिन्दी को भाषा ही कहा जाता था। श्री पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने बिस्मिल के इस कथन पर एक कविता में ये पंक्तियाँ कभी लिखी थीं :– (उर्दू छुड़ा के हिन्दी का नक्शा जमा दिया।) पंजाब की जबान को भाषा बना दिया।। –'जिज्ञासु'}

उसी समय के मेरठ से निकलने वाले 'आर्य समाचार' पत्र की भाषा से जब हम सद्धर्म प्रचारक की भाषा की तुलना करते हैं तब इस नई पंजाबी उर्दू के निर्माण का महत्व समझ में आता है। उस समय संस्कृत मिश्रित उर्दू की जो प्रणाली आरम्भ हुई, पंजाबियों द्वारा सम्पादित उर्दू पत्रों में आज तक भी वह प्रचलित है।

26 नवम्बर सायंकाल को दो महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए। पहला व्याख्यान लाहौर के प्रख्यात रामभज दत्त चौधरी का था जिसका विषय था 'गुरुकुल शिक्षा प्रणाली'। दूसरा व्याख्यान श्रीमान् रोशनलाल जी का अंग्रेज़ी में हुआ। उसका विषय था ***'पश्चिमी दुनिया में अशान्ति और उसका इलाज'।*** उसके अन्त में भी वक्ता ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की चर्चा करते हुए बतलाया था कि संसार के आत्मिक रोगों के निवारण के लिए वही उत्तम शिक्षा प्रणाली है।

'आर्यसमाज का इतिहास भाग–1' से साभार

☞ पृष्ठ 04 का शेष

भारतीय साहित्य ...

क्यों समझे? जिस समाज व्यवस्था में शूद्र छोटे हैं, ब्राह्मण बड़े हैं, स्त्रियाँ शूद्रों के समान हैं, वह व्यवस्था पुरोहितों की रची हुई है, संस्कृति के मूल स्रोतों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यजुर्वेद में कहा गया है– **यथा इमां कल्याणीं वाचम्**, जिस प्रकार इस कल्याणकारी वाणी का हमने **ब्रह्मराजन्याभ्यां च शूद्राय च अर्याय स्वाय अरणाय च जनेभ्य आवदानि** ब्राह्मण व क्षत्रियों के लिए और शूद्र के लिए तथा वैश्य के लिए अपने प्रिय लगने व प्रिय न लगने वाले, पराए एवं सम्पूर्ण जनों के लिए उपदेश किया है, वैसे हे मनुष्यो ! तुम लोग भी करो। {(यजु. 26.2) सातवलेकर, यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, पृ. 423}

जब यजुर्वेद रचा गया था, तब समाज में चार वर्ण थे। यह वेद किसी एक वर्ण के लिए नहीं वरन् शूद्रों समेत चारों वर्णों के लिए है। शूद्र वेद न पढ़ें, पुरोहितों का यह कार्य वा निर्णय वेदविरोधी था। इन्हीं पुरोहितों द्वारा शूद्रों के साथ स्त्रियों के लिए कहा गया– वे वेद न पढ़ें। लेकिन ऋग्वेद के अनेक सूक्त और मन्त्र स्त्रियों के रचे हुए परम्परा से प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद के 8वें मण्डल का पूरा 91वाँ सूक्त आत्रेयी अपाला का रचा हुआ है। 10वें मण्डल के 39वें एवं 80 वें सूक्त कक्षावती घोषा के रचे हुए प्रसिद्ध हैं। धर्मरक्षक पण्डित स्त्रियों के रचे हुए वेदमन्त्र स्वयं पढ़ते थे, परन्तु स्त्रियों को उन्हें पढ़ने का अधिकार न देते थे।

राजा राममोहन राय परम वेदान्ती थे। उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। यह नहीं कहा कि आत्मा के लिए शरीर बन्धन है, पति के साथ विधवा भी चिता पर भस्म हो जाए तो उसकी आत्मा मुक्त हो जाएगी। यहाँ व्यवहार में हम वेदान्तियों को लोकहित के लिए संघर्ष करते हुए देखते हैं। विधवाओं की प्राणरक्षा के लिए राममोहन राय को संघर्ष करना पड़ा, इसी प्रकार विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती को संघर्ष करना पड़ा।

पुनर्जन्म तथा कर्मफल सिद्धान्त

भारतीय दर्शन में पुनर्जन्म एवं कर्मफल का सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण विषय है, जो आत्मा की नित्यता, देह से भिन्नता तथा जीवात्मा की सद्गति एवं दुर्गति का आधार है। यही सिद्धान्त व्यक्ति को पापकर्म एवं अनाचार से विरत कर पुण्य कर्मों के प्रति प्रेरित करता है। वेदों में उक्त सिद्धान्त के प्रतिपादक अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्
ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति
स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।

ऋग् 1.164.30

परमेश्वर **(पस्त्यानाम्)** शरीरों के **(मध्ये)** बीच में रहने वाले **(ध्रुवम्)** अविनाशी **(तुरगातु)** शीघ्र गति वाले **(जीवमेजत्)** जीव को गति देता हुआ तथा **(अनत्)** प्राणशक्ति सम्पन्न करता हुआ (शये) रहता है। **(मृतस्य अमर्त्यः)** मृत का न मरने वाला **(जीवः)** जीवात्मा **(स्वधाभिः)** अपने गुण तथा पाप कर्मों के कारण **(मर्त्येन सयोनिः)** मरणधर्मा शरीर के साथ समान स्थान वाला होकर जगत् में **(आ चरती)** बार–बार आता है।

आहाराः विविधाः भुक्ताः
पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधाः दृष्टाः
पितरः सुहृदस्तथा।।

निरु० परिशिष्ट 6 ख., 14 अ.

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद
ततो वपूंषि कृणुते पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेश
यो वाचमनुदितां चिकेत।।

अथर्व. 5.1.2

अर्थात् आदि गुरु परमात्मा ने सबसे पूर्व धर्मों कर्तव्यों अथवा धारक नियमों को बनाया है, उसके बाद वह अनेक शरीरों को बनाता है। फिर **धास्युं** जीवात्मा को शरीर में प्रवेश कराता है। जीवों के कल्याणार्थ सर्गारम्भ में अनुदित–अव्यक्त वाणी को चिताता है, सिखाता है। इसी प्रकार वेदमन्त्रों से प्रेरणा प्राप्त कर भारतीय दार्शनिक आचार्यों ने पुनर्जन्म के वैदिक सिद्धान्त को तर्क तथा प्रमाणों से परिपुष्ट कर दृढ आधार भूमि प्रदान की। यदि हमारे वर्तमान जन्म का आधार पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्म का परिणाम नहीं है तो वर्तमान जन्म से पूर्व हमारा जीव कहाँ था और क्या कर रहा था? क्योंकि जीव शाश्वत अर्थात् नित्य है। जीव के कर्म भी प्रवाह रूप से नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। पूर्वजन्म तथा परजन्म (परलोक) न मानने पर **अकृताभ्यागम** तथा **कृतहानि** दोष होगा क्योंकि इस जन्म में हम जो सुख और दुःख प्राप्त करते हैं, इस सुख–दुःख रूपी फल के अभ्यागम (प्राप्ति) का कोई हेतु न होने से अकृत अर्थात् बिना कुछ किए सुख–दुःख का प्राप्त होना (अकृत+अभ्यागम) अकृताभ्यागम दोष से युक्त माना जाएगा। इसी प्रकार अगला जन्म–परजन्म वा परलोक न मानने पर हमने इस जन्म में जो भी शुभ वा अशुभ कर्म किए हैं, उनका फल न मिलने से कृतहानि होगी।

यह विषमसृष्टि जीव कर्म सापेक्ष है। जो जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। पुनर्जन्म और परजन्म अर्थात् इहलोक और परलोक की अवधारणा में कर्मफल सिद्धान्त का नियम काम करता है। ऐसा न मानने पर जगत् रचयिता और जगत् पिता (पालक) परमेश्वर में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष मानने पड़ेंगे किन्तु ईश्वर इन दोषों से सर्वथा मुक्त है। कर्मफल सिद्धान्त का मूल भी वेद है–

न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न
यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं
पक्वः पुनरा विशाति।।

अथर्व० 12.3.48

अर्थात् कर्म जब तक अपने फल को नहीं देता, तब तक वह संचित रूप में रहता है अर्थात् जब तक किसी कर्म का फल मिल नहीं जाता, तब तक वह संस्कार के सूक्ष्म रूप में टिका रहता है, वह नष्ट नहीं होता। जिस प्रकार ईश्वर की जगत् सर्जना (सृष्टि) और पालना आदि नियम व्यवस्थित, अटल और अटूट हैं, उसी प्रकार ईश्वर की कर्म फल–व्यवस्था भी नियमबद्ध, व्यवस्थित, अटल और अटूट है।

इन्हीं वेदमन्त्रों के आलोक में महामुनि व्यास और महर्षि पतंजलि अपने वेदान्त दर्शन तथा योग दर्शन में क्रमशः **फलमत उपपत्तेः** (वेदान्त सूत्र 3.2.38) तथा **सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः** (योग दर्शन 2.13) सूत्रों की रचना करते हैं। भारतीय आस्तिक दर्शनों की यह मूल भित्ति है, इसी परिप्रेक्ष्य में **वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति** (वेदान्त सूत्र 2.1.34) तथा **कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्** (सांख्य सूत्र 6.41) वैयासिक और कापिल सूत्रों को भी समझना चाहिए। योगदर्शनकार स्पष्ट लिखते हैं– **पूर्वकृतफलानुबन्धात् जगदुत्पत्तिः** अर्थात् पूर्वजन्म में किए गए कर्मों के फल के अनुरूप ही शरीरों की उत्पत्ति होती है। महामुनि व्यास का यह वचन पूरे हिन्दू समाज में व्याप्त है–

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

महाभारत

इसी आधार पर लोक में इस प्रकार के आभाणक प्रसिद्ध हैं–

जैसा बोओगे वैसा काटोगे।

बोये पेड़ बबूर के तो आम कहाँ से होय।

जैसी करनी वैसी भरनी।

भारतीय संस्कृति का इतिहास लोकविरोधी रूढियों और प्रगतिशील विचारधाराओं के सतत संघर्ष का इतिहास है। उस इतिहास का अध्ययन इसलिए आवश्यक है कि हम लोकविरोधी रूढियों को भारतीय संस्कृति का सारतत्त्व न समझ लें वरन् प्रगतिशील विचारधाराओं से कुछ सीखकर उनके आधार पर नई संस्कृति का विकास करें।

चाणक्यपुरी, अमेठी,
(उ. प्र.) पिन–227405
मो. न. 730347430

☞ पृष्ठ 05 का शेष

ऋषिभक्त आर्य ...

ने राम व लक्ष्मण बनकर तथा अपने पिता के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखकर उनकी सेवा सुश्रुषा की और रोग के दिनों में उन्हें किंचित भी किसी प्रकार का मानसिक कष्ट नहीं होने दिया। सरल जी की धर्मपत्नी माता सुशीला देवी जी सहित उनकी दोनों पुत्र वधुओं ने भी सरल जी की आदर्श सेवा की। वे सभी परिवारजनों की सेवा से पूर्ण सन्तुष्ट थे। परिवार जनों ने सरल जी की अत्यन्त महंगी चिकित्सा कराई परन्तु वे स्वस्थ नहीं हो सके।

हम ऋषिभक्त, सरल हृदय एवं स्वाभिमानी श्री सत्यपाल सरल जी को अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हैं और आशा करते हैं कि उनकी सामाजिक सेवाओं को आर्यसमाज याद रखेगा और उनसे प्रेरणा ग्रहण कर वेदप्रचार के कार्यों में तन, मन व धन से सहयोग करेगा।

आर्यकवि कवि कस्तूर चन्द 'घनसार' जी की श्री सत्यपाल सरल जी पर एक कविता की कुछ पंक्तियाँ देकर इस लेख को विराम देते हैं:

सरल–सरस गान मधुर आवाज साथ, वाद्य ताल सुर–शुद्ध–गायक सुभाषते।
गीत ज्ञान गुण नेक विवेक विचार शुद्ध, आर्य उपदेशकसों बोलते उलासते।
आर्य जगत् में यत्र तत्र भाषण सरल रस, सुवासित भव्य भाव विभोर विलासते।
आर्यावर्त्त में प्रचार विशद् कर, आर्य सत्य वैदिकसों प्रचार प्रकाशते।
सत्यपाल 'सरल' जी तरल तरुण वय, सुशोभित सभा मध्य मधुर सुगानते।।

196 चुक्खूवाला–2, देहरादून–248001
मो. 09412985121

पत्र/कविता

करने आलोकित था आया स्वयंप्रभा से आर्यसमाज

देवभूमि भारत की माटी का अनुपम एक दिव्य पुंज।
अवतरण हुआ इस धराधाम में पुष्पित करने आर्य निकुंज।।

अति पावन यह पुष्प दिवस है जिसको मना रहे हम आज।
जिनकी छाँव तले यह जीवन महक रहा यह बृहद् समाज।

19 अप्रैल 1864, बजवाड़ा पंजाब प्रांत,
चुन्नीलाल और हर देवी के घर जन्मा एक प्रशांत।।

खुशियों की शहनाई गूँजी नामकरण किया हंसराज
करने आलोकित था आया, स्वयंप्रभा से आर्यसमाज।।

किन्तु काल के कूर कृत्य से छिना सहारा मिला महादुःख।
बारह वर्ष की अल्प आयु में किया प्रकृति ने पिता विमुख।।

दिया सहारा अग्रज ने तब प्रारंभिक शिक्षा दिलवाई।
विपदा और अभावों में रह बी.ए. की डिग्री थी पाई।।

उसी समय एक दिव्य पुरुष श्री दयानन्द का हुआ आगमन।
लगी गूँजने अमृतवाणी, करने आर्य समाजी जीवन।।

कहा उन्होंने वेदों से ही मिल सकता है सच्चा ज्ञान।
ईश्वर अजर, अमर, अनुपम है प्रीतिपूर्वक कर्म प्रधान।।

नाश अविद्या का तुम करके विद्या की तुम वृद्धि करो।
सबकी उन्नति में निज उन्नति समझ आत्मिक शुद्धि करो।।

हुआ प्रभावित युवा हदय तब और लिया नूतन संकल्प।
वेद–ज्ञान सब तक पहुँचाना ही केवल है एक विकल्प।।

पंडित गुरुदत्त संग मिलकर स्थापित किया एक डी.ए.वी।
अंग्रेज़ी संग वैदिक शिक्षा का अदभुत्संगम डी.ए.वी,

आज हजारों विद्यालय हैं मिलती जहाँ आधुनिक शिक्षा।
भारतीय संस्कृति की पोषक मिलती गुरुकुल जैसी शिक्षा।।

ज्ञान–रश्मि की आभा में सारे आर्य प्रकाशित आज।
लहरा रहा आर्य हवन है जग में, ऋणी आज सम्पूर्ण समाज।।

ऐसे महामना के चरणों में है श्रद्धा सुमन समर्पित।
आर्यसमाजी बनकर के सब कर दें अपना जीवन अर्पित।।

राकेश कुमार तिवारी,
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल,
बुरहर, जिला शैडोल (म.प्र.)
मो. 8965962030

बीरबल सिंह ढालिया

अमर शहीद बीरबल ढालिया का जन्म राजस्थान में श्रीगंगानगर जिले के रायसिंह नगर में हुआ था। पिता का नाम श्री सालगराम था। जीनगर राजस्थान की एक क्षत्रिय बिरादरी है और इस समाज के लोगों ने खुद को सामाजिक सेवाओं से जोड़कर रखा है। पंवार समुदाय के बहुमत के कारण उस समय रायसिंह नगर का नाम पंवारसर था और वह बीकानेर रियासत का छोटा सा शहर था। रूई का व्यापार. उनका खानदानी पेशा था। बीरबल सिंह को रूई की आढ़त विरासत में मिली थी। तब बीकानेर एक रियासत थी, जिसके राजा शार्दूल थे। शार्दूल सिंह अंग्रेजों की नीतियों का समर्थन करते थे। बीरबल सिंह बचपन से ही देश प्रेमी थे। उन्होंने सामन्ती अत्याचारों का विरोध किया और नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। वर्ष 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय बीरबल सिंह बीकानेर प्रजा मंडल के सदस्य थे। उन दिनों राज्य की ओर से प्रजा मंडल की अधिवेशन के आयोजनों पर तो कोई प्रतिबंध नहीं था, लेकिन तिरंगा झण्डा फहराने पर कठोर प्रतिबंध था। रियासत की ओर से यह प्रतिबंध तोड़ने पर कठोर सजा का ऐलान भी किया गया था। इसके बावजूद 30 जून, 1946 को राज्यादेश की अवहेलना का शहर में तिरंगा लेकर जुलूस निकाला गया, जिसमें बीरबल सिंह की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सिपाहियों ने जुलूस को घेर लिया और लोगों पर लाठियां बरसाने लगे। बीरबल सिंह जुलूस में सबसे आगे तिरंगा लेकर चल रहे थे इसलिए पुलिस की लाठियों के निशाने पर सबसे ज्यादा वही आए। लाठियों की मार इतनी जबरदस्त थी कि काफी तंदुरुस्त शरीर के होने के बावजूद बीरबल सिंह की बाँयी भुजा लहूलुहान हो गई। इसके बावजूद आज़ादी के दीवानों का जोश कम नहीं हुआ। वे 'भारत माता की जय' और 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए आगे बढ़ने लगे। जब प्रशासन ने देखा कि पुलिस की लाठियां भी इन दीवानों का रास्ता नहीं रोक पा रहीं, तब सेना के जवानों ने जुलूस पर अंधाधुंध गोलियां चलानी शुरु कर दी, बीरबल सिंह की जांघ में तीन गोलियाँ लगीं, फिर भी वह तिरंगा थामें आगे बढ़ते रहे। उनके शरीर से खून बह रहा था। काफी गंभीर स्थिति में उन्हें चारपाई पर टांगकर अस्पताल ले जाया गया। तब भी वे हाथ में तिरंगा थामे हुए थे। अस्पताल में मौजूद चिकित्सक उस दशा में भी उनकी हिम्मत देखकर दंग थे। अचेत होने से पहले उन्होंने अपने एक क्रांतिकारी साथी को तिरंगा सौंपते हुए कहा, 'अब इसके सम्मान की जिम्मेदारी तुम्हारी है।' 1 जुलाई, 1946 को अस्पताल में ही बीरबल सिंह ने आँखें मूँद ली। वह जीनगर समाज के प्रथम शहीद थे। उसी दिन शहीद का पार्थिव जुलूस निकाला गया, जिसमें आजाद हिंद फौज के कर्नल अमर सिंह तिरंगा झण्डा लेकर सबसे आगे चल रहे थे।

तिरंगे के लिए अपना जीवन कुर्बान कर देने वाले बीरबल सिंह ढालिया को लोगों और समाज ने याद रखा है। राय सिंह नगर के रेस्ट हाउस के पास, जहाँ बीरबल सिंह को गोली लगी थी, उनकी स्मृति में संगमरमर की एक प्रतिमा स्थापित की गई है। हर साल 30 जून और 1 जुलाई को वहाँ शहीद मेला लगता है, जिसमें दूर–दूर से लोग उन्हें श्रद्धांजलि देने आते हैं। श्री गंगानगर के मुख्य चौक में शहीद बीरबल सिंह ढालिया की मूर्ति स्थापित की गई है, जिसे शहीद बीरबल चौक कहा जाता है। वहाँ शहीद के नाम से एक उद्यान भी है।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्वाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****